बाहेर भेख देख भुलाने, तुम भीतर खोज न कींनी।
भागवत वचन वल्लभी टीका, तुम याकी सुध न लींनी।।७ ।।

तुमने अपने गुरु के बाहरी भेष को देखा। उनके अन्दर कितना ज्ञान है इसकी खोज तुमने नहीं की। इस तरह से बड़ी भूल की। तुमने भागवत के सुबोधिनी टीका को नहीं देखा। इसलिए तुम्हें उसका ज्ञान नहीं मिला।

ए तो हाथ में वस्त कहूं दूर न देखाऊं, तुम देखो खोज विचारी।
सांच झूठ को प्रगट पारखो, कोई निकसो इन अंधारी।।८ ।।

हे सन्तो-महन्तो! तुम खोजो और विचार करके देखो जो सुबोधिनी टीका से स्पष्ट है। मैं दूर की बात नहीं करता। तुम इसी से सत और झूठ की पहचान कर इस माया के ब्रह्माण्ड से निकलो।

भवसागर और भागवत, याकी कुंजी एक समारी।
ए दोऊ ताले दोऊ दरवाजे, कोई खोल न सके संसारी।।९ ।।

भवसागर और भागवत दोनों की एक ही कुंजी है। यह दो ताले जो दो दरवाजों पर लगे हैं इनको कोई संसारी लोग नहीं खोल पाए, अर्थात् भवसागर से निकलने और भागवत के ज्ञान समझने की कुन्जी किसी के पास नहीं है।

ए संसार बड़ा है कोहेड़ा, और कोहेड़ा भागवत।
ए दोऊ एक कुंजी से खोलूं, जो कोई देखूं आगे संत।।१०।।

यह संसार और भागवत दोनों कोहेड़ा (धुंध) हैं। इन दोनों तालों को जागृत बुद्धि के तारतम ज्ञान से किसी बुद्धिमान के सामने ही खोलूंगी।

जो कोई खप करे या निध की, सो नाखे आप निघात।
महामत कहे ताए अखंड सुख दीजे, टालिए संसारी ताप।।११।।

श्री महामतिजी कहते हैं कि इस न्यामत की अगर कोई चाहना करे तो अपने आप की कुर्बानी दे, अर्थात् अपना अहम् (अहंकार) त्यागे तो उसे भवसागर के जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त कर अखण्ड सुख दे दूंगी।

॥ प्रकरण ॥ १० ॥ चौपाई ॥ १०० ॥

राग श्री नट

रे हूं नाहीं रे हूं नाहीं सिध साध संत री भगत, नाहूं वैष्णव अपरस आचार।
जात कुटम कुल नीच ना ऊंच, ना हूं बरन अठार।।१ ।।

पारब्रह्म कहते हैं कि मैं न कोई सिद्ध हूं, न साधु हूं, न सन्त हूं, न भक्त हूं और न छुआ-छूत मानने वाले वैष्णवों में ही हूं। न मेरी कोई जाति है, न मेरा कोई परिवार है और न मेरा कोई कुल है। न मैं नीच जाति का हूं और न बड़ी जाति का हूं और न अठारह वर्णों में ही हूं।

रे हूं नाहीं व्रत दया संझा अगिन कुंड, ना हूं जीव जगन।
तंत्र न मंत्र भेख न पंथ, ना हूं तीरथ तरपन।।२ ।।

न मैं व्रत में, न दया में, न संध्या में, न अग्नि-कुण्ड में, हवन करने वालों में नहीं हूं—न मैं उन जीवों में हूं जो रात्रि में जागते हैं। तंत्र, मंत्र, भेष, पंथ, तीर्थ, आदि में—मैं नहीं हूं।

रे हूं नाहीं करामात मत अगम निगम, धरम न करम उनमान।
सुपन सुषुप्त जाग्रत न तुरिया, तप न जप न ध्यान।। ३ ।।

मैं करामात की बुद्धि में अगम निगम की विचारधारा वाले वेद पाठियों में धर्म, कर्म, अटकल में भी नहीं हूं। मैं स्वप्न, सुषुप्ति, जागृत और तुरिया अवस्था में भी नहीं हूं। तप, जप और ध्यान करने वालों में भी मैं नहीं हूं।

रे हूं नाहीं अंग इंद्री ग्यान ब्रह्मचारी, ब्रह्मांड न लगत वचन।
रूप रंग रस धात में नाहीं, गुन पख दिवस ना रैन।। ४ ।।

मैं गुण, अंग, इन्द्रियों को वश में करने वालों में नहीं हूं। ब्रह्मचारियों में नहीं हूं। रूप, रंग, रस, धातु में नहीं हूं। तीन गुण, अंतःकरण (मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार), दिन और रात में नहीं हूं। ब्रह्माण्ड के दूसरे कोई शब्द मुझे नहीं लगते।

रे हूं नाहीं सब्द सोहं जो तत्व पांचमें, न खट चक्र सिर पवन।
त्रिकुटी त्रिवेनी तीनों ही काल में, न अनहद अजपा आसन।। ५ ।।

मैं सोऽहं शब्द के मानने वालों में नहीं हूं। पांच तत्वों के बने शरीर के पालने वालों में नहीं हूं। षट्चक्र शोधन करने वालों में नहीं हूं। मैं प्राणायाम में नहीं हूं। मैं त्रिकुटी (इला, पिंगला, सुषुम्ना) की त्रिवेणी में मन एकाग्र करने वालों में नहीं हूं। यहां भूत, वर्तमान और भविष्य काल में नहीं हूं। न अनहद, अजपा जाप करने वालों में हूं और न ही आसन और प्राणायाम करने वालों में हूं।

रे हूं नाहीं नवधा में मुक्त में भी नाहीं, न हूं आवा गवन।
वेद कतेब हिसाब में नाहीं, न मांहें बाहेर न सुंन।। ६ ।।

मैं नवधा भक्ति में नहीं हूं। बैकुण्ठ की चार मुक्तियों में नहीं हूं। जन्म-मरण के चक्कर में नहीं हूं। वेद और कतेबों के ज्ञान में नहीं हूं। न पिण्ड में हूं, न ब्रह्माण्ड में हूं और न निराकार में हूं।

रे हूं नाहीं न्यारा जहां हूं तहां नजीक में, न हूं उनमुनी आकार।
न हूं दृष्टें किन सुनिया री सृष्टें, न हूं निराकार।। ७ ।।

मैं अष्ट आवरण के ऊपर पांच शक्तियों में नहीं हूं जिनकी प्रधान उन्मुनी शक्ति है। इस सृष्टि में मुझे किसी ने देखा नहीं और न मेरी बाबत सुना ही। मैं निराकार में नहीं हूं।

तुम सांचे सिध साध भगवत तुमको वैष्णवो, सांच सकल संसार।
भनत महामत तुम अमर होउ याही में, मैं न कछू यामें निरधार।। ८ ।।

श्री महामतीजी कहते हैं, हे वैष्णवो! तुम अपनी सिद्धि साधना जिसे सत्य समझते हो और तुम जिस संसार को सत्य समझते हो, तुम इसी में अमर रहो। पारब्रह्म का इससे कोई सरोकार नहीं है।

॥ प्रकरण ॥ ११ ॥ चौपाई ॥ १०८ ॥

राग श्री गौड़ी

वचन विचारो रे मीठड़ी, वल्लभाचारज बानी।
अर्थ लिए बिना ए रे अंधेरी, करत सबों को फानी।। १ ।।

श्री महामतिजी कहते हैं, हे वैष्णवो! तुम वल्लभाचार्य की मीठी वाणी पर विचार करो। इसके अर्थ न समझने के कारण ही तुम सबको नष्ट कर रहे हो। फानी (नश्वर) दुनियां में भटका रहे हो।